

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थकार एवं उनके ग्रन्थ

प्राचीन काल में आयुर्वेद की अनेक संहिताओं की रचना विभिन्न महर्षियों द्वारा हुई। उस समय ये संहिताएं 'तन्त्र' नाम से प्रसिद्ध थीं। तन्त्र शब्द विस्तार एवं रक्षा का बोधक है। जिसमें विषयों का वर्णन संक्षिप्त हो, परन्तु भविष्य में उनके विस्तार की संभावना हो तथा सम्पूर्ण विषय सुरक्षित रहे वह तन्त्र हैं। जिन ग्रन्थों में भाष्यरूप में विस्तृत विषयों का वर्णन हो उन्हें संहिता संज्ञा दी जाती है। किसी

विषय के सभी वर्णनीय विषयों का जिस ग्रन्थ में वर्णन हो उसे 'संहिता' कहते हैं।

"परः सन्निकर्षः संहिता" (पाणिनि)।

अर्थात् एक प्रकार के विषयों को जहाँ पर संग्रह किया जाये, उसे संहिता कहते हैं।

आयुर्वेद की अनेक संहिताओं का नाम विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, उनमें से अधिकांश के केवल नाम ही शेष हैं। प्राचीन संहिताओं में चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेलसंहिता और काश्यपसंहिता ही प्राप्त होती हैं। पूर्ण तो चरकसंहिता

और सुश्रुतसंहिता ही पूर्ण रूप में प्राप्त होती है शेष दो खण्डित और पूर्ण भी नहीं।

हारीतसंहिता नाम से एक संहिता प्राप्त होती है, जिसकी भाषा शैली और विषयवस्तु से वह एक सामान्य व्यक्ति की रचना प्रतीत होती है। आचार्य वाग्भटकृत दो ग्रन्थों अप्यङ्गहृदय और अप्यङ्गसंग्रह की गणना भी संहिताओं में की जाती है। इनमें से अष्टाङ्गहृदय ही अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है।

### 3.1 चरक-चरकसंहिता

प्राचीनकाल में ऋषियों को दो प्रकार का माना गया है- शालीन और यायावर। शालीन प्रकार के ऋषि कुटी बनाकर रहते थे और यायावर ऋषि घूमते रहते थे। चरक भी यायावर कोटि के ऋषि थे जो एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते

थे। उन्होंने ग्राम्यवास की निन्दा की है। उन्होंने गोष्ठियों का आयोजन भी अरण्य प्रदेशों में किया। चरक उच्चकोटि के कवि थे। उन्होंने चरकसंहिता में परिमार्जित श्लिष्ट गद्य और पद्य का प्रयोग किया है। जो विषय अग्निवेशतन्त्र में सूत्ररूप में संक्षिप्त थे, उन विषयों की चरक ने विस्तृत व्याख्या की है।

चरक का काल:- (7 वीं शती ई.पू.) चरक के काल की ऊपरी सीमा पर विचार के लिए पाणिनि के द्वारा उद्धृत चरक शब्द और बौद्धधर्म की छाया (5 वीं शती ई.पू.) पर विचार किया जा सकता है क्योंकि पाणिनी ने चरक शब्द का प्रयोग किया है और चरकसंहिता पर बौद्धधर्म धर्म का छाया की बात को नकारा नहीं जा सकता है। जेन्ताक, खुड्डाक, खुड्डिका, आयतन, वेदना, जाति और गर्भावक्रान्ति आदि शब्दों का प्रयोग बौद्ध छाया का सूचक है।

इनकी निम्न सीमा पर विचार के लिए भी अनेक तथ्य हैं - वाग्भट प्रथम ने चरक को स्पष्टतः उद्धृत किया है। याज्ञवल्क्यस्मृति (तीसरी शती) ने चरक के अनेक विषयों का वर्णन किया है। शर्कों के सम्प्रदाय में चरक का नाम प्रचलित था और उन्हीं में से एक कनिष्क का वैद्य था।

अतः सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के जो संकेत चरकसंहिता में प्राप्त होते हैं उनके अनुसार शृंगकाल (दूसरी शती ई.पूर्व) मानना चाहिए।

चरक संहिता के निर्माण के स्तर-

1. अग्निवेश - मूलतन्त्रकार - काल 1000 ई.पू. है

2. चरक इनका काल दूसरी शताब्दी है।

3. दृढबल - गुप्तकालीन है। काल चौथी शती है। इन्हीं के द्वारा चरकसंहिता का अन्तिम प्रतिसंस्कार हुआ।

चरकसंहिता के आदि आचार्य अग्निवेश है इन्होंने आत्रेय के उपदेशों का सूत्र रूप में संकलन किया, यह पहला स्तर है। दूसरे स्तर में चरक ने अग्निवेशतन्त्र को भाष्य के रूप में विस्तृत किया। इसके बाद दृढबल ने जिस अग्निवेशतन्त्र का

प्रतिसंस्कार किया वह अधूरा था। उसमें चिकित्सास्थान के तीस के स्थान पर तेरह अध्याय थे। कल्पस्थान और सिद्धिस्थान भी नहीं था। चिकित्सास्थान के सत्रह अध्यायों में कल्पस्थान और सिद्धिस्थान को जोड़कर ग्रन्थ को पूर्ण किया। इस प्रकार आदि आचार्य अग्निवेश, दूसरे संस्कर्ता चरक और तीसरे प्रतिसंस्कर्ता दृढबल से प्रति संस्कारित चरक संहिता का वर्तमान स्वरूप सामने आया। दृढबल के प्रतिसंस्कार के बाद यह प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई यह तृतीय स्तर है।

चरकसंहिता का विषय-विभाग

तालिका-

अन्तिम दो अध्याय संग्रहाध्याय कहे गये हैं। सूत्रस्थान और चिकित्सास्थान में अध्यायों की अधिकतम संख्या है। इससे ज्ञात होता है कि चरक ने मौलिक सिद्धान्त और कायचिकित्सा का मुख्य रूप से वर्णन किया है। संशोधन चिकित्साका वर्णन दो अध्यायों में किया गया है। चरकसंहिता मुख्यतः मौलिक सिद्धान्त एवं कायचिकित्सा का उपजीव्य ग्रन्थ है।

सिद्धिस्थान में प्राप्त श्लोक से सुश्रुतसंहिता के समान चरकसंहिता में उत्तरतन्त्र की सूचना देता है। चरक के समय में ऋषि-परिषदें ज्ञानार्जन का उपाय मानी जाती थी अतः

समय-समय पर ऋषि परिषदों का आयोजन किया जाता था और सभी अपने-अपने विचार रखते थे। अध्यक्ष द्वारा सिद्धान्त निर्णय लिया जाता था।

चरकसंहिता का महत्त्व एवं विशेषताएँ

चरकसंहिता आत्रेय सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। इसमें कायचिकित्सा का मुख्य रूप से उल्लेख किया गया है। आधुनिक चिकित्साविज्ञान जिस समय शैशवावस्था में था। उस समय चरकसंहिता में प्रतिपादित आयुर्वेदीय

विषयों से सम्पूर्ण संसार प्रभावित एवं आश्चर्यचकित था। आयुर्वेद की बृहत्त्रयी में चरकसंहिता का प्रथम स्थान है। वाग्भट ने भी चरकसंहिता को प्रथम स्थान दिया है। इसकी प्रमुख विशेषताओं पर हम इस प्रकार दृष्टिपात कर सकते हैं-

1. चरकसंहिता में संभाषा का विचार विस्तार से तथा मौलिक रूप में प्राप्त होता है। ज्ञानार्जन के तीन उपायों में संभाषा भी एक है। आयोजित परिषदों द्वारा अनुमोदित होने पर ही कोई सिद्धान्त या ग्रन्थ प्रचलित किया जाता

था। चिकित्सा कर्म के लिए कहा है-"वैद्यसमूहो निःसंशयकराणाम्" अर्थात् चिकित्सक भी गंभीर रोगों में परस्पर विचार विमर्श कर निर्णय लेते थे।

2. आयुर्वेद का मूलभूत सिद्धान्त त्रिदोष के अतिरिक्त पञ्चमहाभूत, रसगुणवीर्यविपाक आदि मौलिक सिद्धान्तों का निरूपण वैज्ञानिक रीति से किया गया है। इन सिद्धान्तों को विकसित करने के लिए वस्तुओं के स्वभाव की तह तक पहुँचे। इस महान् कार्य में उन्होंने प्रकृति का पूरा उपयोग किया था। इन सिद्धान्तों का क्षेत्र केवल भारत ही नहीं रहा अपितु सारे विश्व में मूलतः चिकित्सापद्धतियों को इन्होंने प्रभावित किया।

3. परम्परागत चिकित्साकर्म के स्थान पर ज्ञानपूर्वक कर्म का उपदेश किया गया है- "ज्ञानपूर्वकं कर्मणा समारम्भं प्रशसन्ति कुशलाः"। चिकित्सक अपने उद्देश्य में ज्ञान और कर्म के समुचित सामञ्जस्य से ही सफलता पा सकता है। प्रमाणों में युक्ति को स्थान देना चरक की मौलिकता है। युक्तिज्ञ ही अपने कार्य में सफल हो सकता है।
4. शरीर और मन के पारस्परिक सम्बन्ध को बड़ी सूक्ष्मता से देखा गया है और चिकित्सा और निदान में देहमानस की संश्लिष्ट धारणा को स्वीकार किया गया है। प्रत्येक पुरुष की प्रकृति की विशेषता को ध्यान में रखकर ही चिकित्सा करने की बात कही है। इस प्रकार चिकित्सा एक अत्यन्त वैयक्तिक प्रक्रिया हो जाती है जो किसी दूसरे पर उसी प्रकार लागू नहीं हो सकती। सामान्य और विशेष का समन्वय चरक की विशेषता है।
5. आयुर्वेद का प्रारम्भ में संक्षिप्त रूप 'त्रिसूत्र' या त्रिस्कन्ध था। आयुर्वेद के तीन स्कन्ध थे-हेतु, लिंग और औषध। इन्हीं का ज्ञान करना होता था। द्रव्यों का साम्य-वैषम्य ही स्वास्थ्य एवं रोग का कारण है।
6. चरकसंहिता में निदान की वैज्ञानिक पद्धति का विधान है। रोग की परीक्षा-प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों को जानकर करने की बात कही है। इसके अतिरिक्त दोष, दूष्य, अग्नि, सत्त्व, प्रकृति आदि पर विचार किया जाता है।
7. चरक की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा है। चरक का कहना है कि औषध रोग को दबाने के लिए नहीं अपितु प्रकृति को सहायता देने के लिए प्रयुक्त होती है। चरक द्वारा उद्धृत 'स्वभावोपरमवाद' प्राकृतिक चिकित्सा का मूल है।
8. रोगों की रोकथाम और इलाज के अतिरिक्त उस समय महर्षियों का ध्यान वयः स्थापन और दीर्घायुष्य की ओर विशेष रूप से था। रसायन का विषय चरक का मौलिक है। औषधों के अतिरिक्त, आचार रसायन चरक की मौलिक देन है। बिना औषध के भी आचार का पालन करने से रसायन का फल प्राप्त होता है और बिना आचार पालन के औषधि भी बेकार है।
9. आयुर्वेदीय द्रव्यगुण को वैज्ञानिक आधार शिला पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय चरक को प्राप्त है। षट्पदार्थों, रसगुण वीर्यविपाक आदि, द्रव्यों का रचनानुसार तथा कर्मानुसार वर्गीकरण सर्वप्रथम चरकसंहिता में प्राप्त होता है। औषधों के नामरूपज्ञान के साथ प्रयोगज्ञान पर भी जोर दिया गया है। औषधियों का ज्ञान नामरूप को जानने के साथ-साथ योगविद् वैद्य को माना गया है। चरकसंहिता पर जिन आचार्यों की टीकायें प्रसिद्ध हैं वे निम्न हैं-

1. भट्टारकहरिश्चन्द्र - चरकन्यास
2. स्वामिकुमार - चरकपञ्जिका
3. जेज्जट - निरन्तरपदव्याख्या
4. चक्रपाणि - आयुर्वेददीपिका
5. शिवदाससेन - तत्त्वचन्द्रिका
6. गंगाधरराय - जल्पकल्पतरु
7. योगिन्द्रनाथसेन चरकोपस्कार
8. ज्योतिषचन्द्र सरस्वती - चरकप्रदीपिका

इसके अतिरिक्त अरबी, फारसी और अंग्रेजी भाषा में भी चरकसंहिता का अनुवाद हुआ है।

### 3.2 सुश्रुत-सुश्रुतसंहिता

दिवोदास धन्वन्तरि के उपदेशों को अपनी संहिता में निबद्ध करने वाले सुश्रुत ही थे। यह शल्यतंत्र का उपजीव्य ग्रन्थ है। सुश्रुत नामक दो आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है एक आद्य या वृद्ध सुश्रुत और दूसरा सुश्रुत। कुछ स्थानों पर

सुश्रुत और वृद्ध सुश्रुत एक ही दिखाई पड़ते हैं। अतः प्रतीत होता है कि दिवोदास का शिष्य आद्य या वृद्धसुश्रुत था जिसने मूल सुश्रुततन्त्र की रचना की। उसके बाद सुश्रुत द्वितीय या सुश्रुत ने इसे प्रतिसंस्कृत किया परन्तु यह ग्रन्थ तब भी अपूर्ण था। बाद में नागार्जुन ने प्रतिसंस्कार किया उसके बाद यह संहिता पूर्ण हुई। अन्तिम पाठ शुद्धि चन्द्रट द्वारा 10 वीं शती में हुई। वर्तमान सुश्रुतसंहिता 10 वीं

शती के बाद की है। सुश्रुतसंहिता निम्न स्तरों पर बनी-

1. वृद्ध सुश्रुत- (1000-1500 ई. पूर्व)
2. सुश्रुत (द्वितीय शताब्दी)
3. नागार्जुन (पाँचवी शताब्दी)
4. चन्द्रट (दसवीं शताब्दी)

इन तथ्यों के आधार पर काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि तथा वृद्ध सुश्रुत का समय ई.पू. 1000-1500 वर्ष माना जाता है। सुश्रुत का दूसरा संस्कार दूसरी शताब्दी का है। तृतीय संस्कार नागार्जुन का है, जो पाँचवीं शताब्दी का है। पाठशोधन संस्कार चन्द्रट ने दसवीं शताब्दी में किया। इस सुश्रुतसंहिता के निर्माण के चार स्तर हैं।

महाभारत के अनशासन पर्व (अ.4) में और गरुडपुराण (अ. 139/8-11) में सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र बताये गये हैं। विश्वामित्र नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। उनमें से एक का सम्बन्ध आयुर्वेद से है। सुश्रुतसंहिता का विषय विभाग

अध्याय एवं विषय-वस्तु

1. सूत्रस्थान

मौलिक सिद्धान्त, शल्यकर्म के उपकरण,

यन्त्र-शस्त्र, क्षार-अग्नि जालौका आदि।

अरिष्ट विज्ञान, द्रव्यगुणविज्ञान आदि।

2. निदानस्थान

प्रमुख रोगों का वर्णन।

3. शरीरस्थान

सृष्टिक्रम एवं शरीर रचना विज्ञान।

4. चिकित्सास्थान

मुख्यतः शल्यचिकित्सा, वाजीकरण, रसायन और पंचकर्म का वर्णन।

5. कल्पस्थान

अगदतंत्र एवं विषों का वर्णन।

इस प्रकार अध्यायों की संख्या 120 है। प्राचीन संहिताओं में इतने अध्याय ही प्राप्त होते हैं। उत्तरतन्त्र बाद में जोड़ा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उत्तरतन्त्र में 66 अध्याय हैं। इसमें शालाक्य, कौमारभृत्य, कायचिकित्सा तथा भूतविद्या का वर्णन है।

सुश्रुतसंहिता की विशेषताएँ

सुश्रुतसंहिता भी चरकसंहिता के समान ही आयुर्वेद के विषयों से सम्बन्धित आकरग्रन्थ है। प्राचीन संहिताओं में चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता ये दो संहिताएँ ही प्राप्त होती हैं।

सुश्रुतसंहिता शल्यप्रधान ग्रन्थ है। यह शल्यसम्प्रदाय का प्राप्त प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसका चिकित्साविज्ञान चरक की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और प्रायोगिक ग्रन्थ है। इससे उस समय के शल्यतन्त्र की उन्नत स्थिति ज्ञात होती है।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् है-

1. सुश्रुत ने स्वयं ही विषय के शिक्षण में अध्ययन, अनुवर्णन, अनुश्रवण तथा कर्म इन सबका महत्त्व प्रतिपादित किया है। अध्ययन तभी पूर्ण होता है, जब अध्येता को शास्त्र के अर्थ का ज्ञान, व्यावहारिक क्रियाओं में दक्षता, कर्माभ्यास और चिकित्साकर्म की सफलता में पूर्ण विश्वास हो जाता है-

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे।

तदभ्यासे च सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः॥

(सु.सू.-3/55)

2. सुश्रुत संहिता में यन्त्रशास्त्रों का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूढगर्भ, अश्मरी, अर्श आदि में शस्त्रकर्म को बताया है। व्रण के साठ उपक्रम बताए गए हैं। व्रणबन्ध की विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है।

3. सुश्रुत में सर्वप्रथम श्वच्छेद का वर्णन प्राप्त होता है। हृदय को काटकर उसके चार प्रकोष्ठों का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार सुश्रुत शल्यतन्त्र के साथ-साथ शरीरशास्त्र के भी जनक माने जाते हैं।

4. इसमें क्षार, अग्नि, जलौका (जोंक) का वर्णन भी प्राप्त होता है। रक्त निकालने के लिए सिराव्यध, जलौका, शृंग, अलाबू आदि विधियों का प्रयोग किया जाता था। दूषित रक्त को निकालने से शान्ति प्राप्त हो जाएगी ऐसा माना जाता है यह एक प्रकार की संशोधन चिकित्सा मानी गई है। सिराव्याध को शल्य की आधी चिकित्सा कहा जाता है जैसे कायचिकित्सा में बस्ति। इसकी पञ्चकर्म में गणना की जाती है। इसे रक्त मोक्षण कहा जाता है।

5. सन्धान शल्य (Plastic Surgery) का सुश्रुतसंहिता में वर्णन है।

6. अतुरालय का वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है। चिकित्सा के सभी अंगों के वर्णन के साथ, कुमारागार और सूतिकागार भी वर्णित है।

7. आत्ययिक (emergency) की अनेक अवस्थाओं उष्णवातातपदग्ध, शीतवर्षनिलहत धूमोपहत आदि का वर्णन है।

8. सुश्रुत का मौलिक सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है। दोषविवेचन के क्रम में पित्त और अग्नि का विचार तथा पाचक, रञ्जक आदि भेद मौलिक कल्पना है।

9. शारीर का विस्तृत वर्णन मिलता है। रक्त का शिराओं में संचरण तथा उसके वर्ण के अनुसार शिराओं का अरुणा, नीला और गौरी में विभाजन भी नवीन है। 'नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः' के द्वारा नाभि में प्राणों को बताया गया।

10. सुश्रुत के अनुसार समदोष, समाग्नि, समधातुकर्म, आत्मा, मन तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता जिसमें पायी जाय वही स्वस्थ व्यक्ति है। कुष्ठ, ज्वर, शोष आदि का संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में होना सर्वप्रथम सुश्रुत ने उल्लिखित किया था।

11. कायचिकित्सा के अन्तर्गत व्याधियों का वर्गीकरण विस्तृत है। पञ्चकर्म, शिरोबस्ति का विस्तृत उल्लेख है। तैलद्रोणी के द्वारा व्यक्ति को सुलाने का विधान है। रोगों के लिए विशिष्ट औषधियों को निर्धारित किया गया है। जैसे- कुष्ठ के लिए तुवरक, खदिर और बीजक; अर्श के लिए कुटज और भल्लातक, प्रमेह के लिए हरिद्रा, आढ्यावात के लिए गुग्गुलु आदि थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सुश्रुत संहिता आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। विशेषतः शल्यतंत्र के क्षेत्र में इसके अवदान अपूर्व हैं एवं ऐतिहासिक हैं। सुश्रुत संहिता की संस्कृत हिंदी और अंग्रेजी में टिकाएं लिखी गई हैं। कुछ संस्कृत टिकाएं इस प्रकार हैं -

गयदास - वृहत पंचिका या न्याय चंद्रिका,

चक्रपाणि दत्त - भानुमति,

डलहण - निबंध संग्रह,

हाराणचंद्र - सुश्रुतार्थसंदीपन।

सुश्रुत पर टिकाओं के अतिरिक्त सुश्रुत संहिता का देशी और विदेशी दोनों भाषाओं में अनुवाद हुआ है विदेशी भाषाएं लैटिन जर्मन अरबी है तथा देशी भाषा मराठी बंगला आदि हैं।

वाग्भट - अष्टांगसंग्रह

भारतीय वाग्भट में अनेक वाग्भटों के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है किंतु आयुर्वेद के क्षेत्र में चारबाग भक्त का परिचय प्राप्त होता है-

1. वृद्ध वाग्भट

2. मध्य वाग्भट

3. लघु वाग्भट

4. रस वाग्भट

अष्टांग संग्रह के रचयिता वृद्ध वाग्भट या वाग्भट प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है। वाग्भट ने अपना परिचय ग्रंथ के अंत में दी गई पुष्पिका में इस प्रकार दिया है - "इति श्री सिंहगुप्तसुनोवाग्भटविरचितायामष्टांगहृदयसंहितामुत्तरस्थानं समाप्तम्"

इससे पता चलता है कि यह सिंधु में जन्मे थे। इनके पिता सिंहगुप्त थे। इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान अपने पिता से प्राप्त किया। इनके पितामह भी भिषक् थे। इससे यह बात सिद्ध होती है कि आयुर्वेद का ज्ञान इन्हें अपने पूर्वजों से मिला। इनका जन्म ब्रह्मण कुल में हुआ था और मूल रूप से वैदिकधर्मानुयायी ही थे परन्तु बौद्ध गुरु का शिष्य होने के कारण बाद में बौद्ध हो गए। ग्रन्थ के प्रारम्भ में बुद्ध को नमस्कार आदि बौद्ध तथ्यों की बहुलता के कारण वे बौद्ध ही माने जाते हैं।

समय:- वराहमिहिर (505-570 ई.) ने वाग्भट के रसायन योगों और ज्योतिष सम्बन्धी विचारों को लिया है। वराहमिहिर का सबसे अन्तिम ग्रन्थ बृहत्संहिता माना जाता है। यह वाग्भट के काल निर्धारण में संकेत का कार्य करता

है। भट्टारक हरिश्चन्द्र चन्द्रगुप्त द्वितीय (375-413 ई.) के काल में थे तथा वाग्भट इनके समकालीन थे। अतः वाग्भट का काल चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इन्दु और जेज्जट वाग्भट के शिष्य थे। जेज्जट ने वाग्भट को उद्धृत किया है।

भट्टारक हरिश्चन्द्र इन्दु से पहले हो चुके थे। अतः वाग्भट का काल भट्टारक हरिश्चन्द्र के समकालीन चौथी शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही ठहरता है। अष्टाङ्गसंग्रह में शका राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है उनका राज्य भी पहली से चौथी तक रहा है।

चीनी यात्री इत्सिंग (671-695) ई. ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि एक व्यक्ति ने आठों अंगों का संग्रह बनाया है जो सम्पूर्ण भारत में फैल चुका था अतः यह स्पष्ट है कि इत्सिंग ने जिसका विवरण किया है वह वाग्भट का ग्रन्थ ही था। इससे वाग्भट का समय सावर्ती शताब्दी का पूर्व होना प्रमाणित हो जाता है। इन सब मतों के आधार पर वाग्भट का समय चौथी शताब्दी का अन्त गुप्तकाल प्रतीत होता है।

अष्टाङ्गसंग्रह का विषय-विभाग:

अष्टाङ्गसंग्रह में 6 स्थान हैं और उन स्थानों का 150 अध्यायों में विभाजन है जो इस प्रकार है

1. सूत्रस्थान
2. शारीरस्थान
3. निदानस्थान-
4. चिकित्सास्थान
5. कल्पस्थान
6. उत्तरस्थान

वाग्भट ने इन अध्यायों में विषयों को वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित करने का पूरा प्रयास किया है।

इस विषय विभाजन से स्पष्ट होता है कि संग्रह की अपेक्षा सूत्रस्थान का संक्षिप्तीकरण किया गया है। शारीरस्थान आधा रह गया है। निदानस्थान तो समान है। चिकित्सास्थान को विस्तृत किया गया है। उत्तरस्थान भी कम है। इस प्रकार अष्टाङ्गसंग्रह का संक्षिप्तरूप ही अष्टाङ्गहृदय है यह वैद्यसमाज में अल्पकाल में ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गया।

अष्टाङ्गसंग्रह की विशेषतायें-

प्राचीन संहिताओं का अनुसरण करने पर भी इसमें अनेक मौलिक तथ्य हैं। उन्हीं में से कुछ प्रमुख तथ्यों को यहाँ उल्लिखित किया जा रहा है

1. धातुओं की वृद्धि के लक्षणों का सामञ्जस्य दोषलक्षणों के साथ किया गया है जैसे रसवृद्धि में श्लेष्मविकार और पित्तविकार आदि।
2. द्रव्यविज्ञान में औषधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। रसायन होने पर भी गुग्गुलु के अत्यधिक सेवन से क्लैव्य आदि दोष हो जाते हैं।
3. ऋतुसन्धि का कालविभाग में वर्णन किया गया है उसी समय प्रायः रोग उत्पन्न होते हैं। ऋतु के लक्षण को काल, मास और राशि के आधार पर किया है।

4. अष्टाङ्गसंग्रह में अर्धगुद रोग का वर्णन प्राप्त होता है इससे मुख से दुर्गन्ध आती है। दन्तोपाटन का वर्णन भी है।
5. चौदह प्रकार के नेत्ररोग बताए हैं। कर्णसाव की लसीका के लगने से पाक हो जाता है।
6. कायचिकित्सा से भिन्न शल्यतन्त्र में भी मौलिक विचारों का वर्णन प्राप्त होता है।
7. रोगों का वर्गीकरण रोगविज्ञान प्रकरण में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है।
8. पाचनकाल के सम्बन्ध में सम अग्नि रहने पर भोजन का पाचन चार याम (12 घंटे) में और औषध का दो याम (6 घंटे) में होता है।
9. प्रलेपक, वाल्बलसक और हारिद्रक ज्वर का वर्णन ज्वर प्रकरण में मिलता है।
10. अनेक आचार्यों के मतों को अगदतन्त्र प्रकरण में वर्णित किया है। कौटिल्य के भी दो योगों का उद्धरण प्राप्त होता है। हरताल विष और धतूर विष का वर्णन है। विषों को चिकित्सीय उपयोग को सर्वप्रथम वाग्भट ने बतलाया है।
11. रसायन प्रकरण ने आसानी से प्राप्त होने वाली औषधियों का वर्णन प्राप्य है- जैसे भल्लातक, पिप्पली, सोमराजी, लशुन, पलाण्डु, गुग्गुलु, शिलाजतु, स्वर्णमाक्षिक आदि। 'शिवा गुटिका' अष्यङ्गसंग्रह का ही योग है।
12. वाजीकरण के अन्य विधानों के अतिरिक्त, पादलेप के योग भी वर्णित हैं।
13. अष्टाङ्गसंग्रह में 36 तन्त्रयुक्तियों का वर्णन मिलता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वाग्भट के समय में धातुओं और विषों का प्रयोग विशेष रूप से होने लगा था परन्तु फिर भी सरलता से प्राप्य वानस्पतिक द्रव्यों का अधिक प्रयोग होता था। अष्टाङ्गसंग्रह की इन्दुकृत शाशिलेखा-व्याख्या अत्यधिक प्रसिद्ध है। अष्टाङ्गसंग्रह की भाषा कठिन, अनेक छन्दों वाली, साहित्य से प्रभावित, भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक वातावरण के अधिक समीप है। इसमें सभी विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसमें आयुर्वेद के दोनों सम्प्रदायों (कायचिकित्सा और शल्यतन्त्र) के विषयों को वर्णित किया गया है। इस एक संहिता के विधिपूर्वक अध्ययन से आयुर्वेद के ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। यह संहिता दक्षिण भारत में विशेष रूप से लोकप्रिय है और चिकित्सकों का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है।

### 3.4 वाग्भट द्वितीय-अष्टाङ्गहृदय

वाग्भट को लघु वाग्भट, स्वल्प वाग्भट, वाग्भट द्वितीय भी कहते हैं। इन नामों के द्वारा इनका वृद्ध वाग्भट या वाग्भट प्रथम से इनकी भिन्नता का पता चलता है। इन्होंने अपना नाम और परिचय ग्रन्थ में कहीं नहीं दिया है, परन्तु निदानस्थान और उत्तरस्थान में प्राप्त पुष्पिका के द्वारा इनके परिचय का संकेत प्राप्त होता है-

"इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितयामष्टाङ्गहृदयसंहितायां तृतीयनिदानस्थानम् समाप्तम्"

"इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्गहृदयसंहितायामुत्तर-

स्थानम् समाप्तम्"

इससे यह ज्ञात हो जाता है कि इस ग्रन्थ के लेखक वाग्भट है और सिंहगुप्त इनके पिता हैं। परवर्ती ग्रन्थों में वाग्भट के नाम से अष्यङ्गहृदय के उद्धरणों से इस ग्रन्थ के कर्ता वाग्भट है ऐसा सिद्ध हो जाता है। यह भी माना जाता है कि वृद्धवाग्भट का ही

वंशज हो अथवा पौत्र हो। पितामह का नाम पौत्र को देने की परम्परा गुप्तकाल में थी। इनकी वंश का क्रम इस प्रकार माना जाता है-

-

वाग्भट→सिंहगुप्त→वाग्भट (प्रथम)→सिंहगुप्त→वाग्भट (द्वितीय)

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण से अनुमान लगाया जाता है कि वे वैदिक धर्म को मानने वाले शैव थे-

"शिवशिवसुतताराभास्कराराधनानि"

समय:-अष्टाङ्गसंग्रह में इनके ग्रन्थ का आधार होने से इनके काल निर्णय में कठिनाई समाप्त हो जाती है अतः इनका प्रथम वाग्भट प्रथम (6 वीं शती) के बाद होगा तथा माधवकर (7 वीं शती) ने अष्टाङ्गहृदय के श्लोकों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। अतः वाग्भट प्रथम और माधवकर के बीच में 7 वीं शती के प्रथम चरण में वाग्भट द्वितीय का समय मानना उचित है।

रचनाएं:-अष्टाङ्गावतार, अष्टाङ्गनिघण्टु और अष्टाङ्गहृदय ये तीन रचनाएं वाग्भट की मानी जाती हैं। परन्तु अष्टाङ्गहृदय इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं आयुर्वेदीय ग्रन्थ है।

अष्टामदय का विषय-विभाजन

अष्टामासंग्रह के अनुसार ही इस ग्रन्थ का विषय विभाजन है परन्तु इसमें अध्यायों की संख्या कम है। कुछ 120 अध्याय हैं, जो निम्न प्रकार हैं-

1. सूत्रस्थान
2. शारीरस्थान
3. निदानस्थान
4. चिकित्सास्थान
5. कल्पस्थान
6. उत्तरस्थान

प्रत्येक रोगों में एक-एक द्रव्य के प्रयोग को बताया है यथा चर में नागरमोथा और पित्तपाण्ड्य वमन में धान की खील, वस्तिगत रोगों में शिलाजीत, प्लीहावृद्धि में पिप्पली, प्रमेह में हल्दी तथा आंवला आदि।

अष्टाङ्गहृदय की शास्त्रीय विशेषतायें

अष्टाङ्गहृदय आयुर्वेद का सार कहना अनुचित नहीं होगा। इसमें चिकित्सा सम्बन्धी सभी तथ्यों के व्यवहारिक पक्ष का समावेश किया गया है। कुछ तथ्यों का उल्लेख निम्नवत् है-

1. द्रव्य-प्रकरण में नये और विशिष्ट द्रव्यों का उल्लेख मिलता है जैसे-आर्क्टिका और गृञ्जनक।

2. रोग के अनुसार द्रव्यों का वर्णन भी ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त होता है- जैसे - प्रमेह में आमलकी, प्लीहामय में पिप्पली, वातरक्त में गुड़ची, वातकफज विकारों में हरीतकी, ज्वर में मुस्तापर्पटक आदि।
3. स्नेहनविधि प्रकरण में सात स्नेहन द्रव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है जो अष्टाङ्गसंग्रह में प्राप्त नहीं होता है।
4. मर्मों की संख्या 6 बताई है इसमें धमनीमर्म प्रथक् है।
5. अनेक नए योग नेत्ररोगों के लिए प्राप्त होते हैं जैसे तिमिररोग में गन्धकयुक्त अञ्जन तथा पादरयुक्त अञ्जन विशिष्ट हैं।
6. रसायन प्रकरण में अनेक प्रचलित द्रव्यों वराहीकन्द, गोक्षुर, शुण्ठी आदि द्रव्य वर्णित हैं। वाजीकरण में उच्चा के प्रयोग को बताया है।
7. चिकित्सा - प्रकरण में अनेक योग है जैसे- अतीसार में दाडिमाष्टक चूर्ण, उदर में अयस्कृति, पाण्डु में मण्डरवटक आदि।
8. यन्त्रप्रकरण में शल्यनिर्धातिनी नाडी तथा अश्मरीहरण यन्त्र का वर्णन है। कुछ विद्वान अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय एक ही वाग्भट की रचना स्वीकार करते हैं उनमें अरुणदत्त एवं इन्दु हैं। इन्दु अष्यङ्गहृदय को पहले और

अष्टाङ्गसंग्रह को बाद की रचना मानते हैं। परन्तु सभी मतों के अनुसार अष्टाङ्गसंग्रह की रचना पहले हुई थी। अष्टाङ्गसंग्रह में भाषा की कठिनता है तथा विषय विस्तृत है जबकि अष्यङ्गहृदय की भाषा सरल तथा स्पष्ट है। संग्रह की भाषा कठिन, अनेक छन्दों वाली, ऐतिहासिक भौगोलिक और सामाजिक है। ग्रन्थ की कठिनता विषयों का विस्तार ही है। जबकि अष्यङ्गहृदय संक्षिप्त, सरल और केवल पद्यमय हैं इसकी सरलता के कारण इसका प्रचार अधिक हो गया और इसको आयुर्वेद की वृहत्संहिताओं (वृहत्रयी) में सम्मिलित अष्टाङ्गसंग्रह का अरबी अनुवाद आठवीं शताब्दी में बगदाद में प्राप्त हुआ। वैदूर्यकभाष्य तिब्बती भाषा में प्राप्त होता है। इसका जर्मन अनुवाद भी 1941 में प्रकाशित हुआ। टीकाकार अरुणदत्त, हिमाद्रि, अष्यङ्गहृदय प्रमुख, चन्द्रनन्दन, इंदु इत्यादि थे।

#### माधव-माधवनिदान

परिचय और काल: माधव ने अपने जीवन के विषय में कुछ स्पष्ट तो नहीं लिखा है। पुष्पिका के आधार पर माना जाता है कि इनके पिता का नाम चंद्रकर था। माधव ने वाग्भट द्वितीयकृत अष्टाङ्गहृदय से अनेक अंश को उद्धृत किया है। वाग्भट का समय 600 ईसवी है। इनके ग्रंथ माधव निदान का अनुवाद अरबी में 800 ईसवी में हुआ था। इन साक्ष्यों के आधार पर इनका समय 600 ईसवी मानना उचित है। सातवीं शताब्दी के आसपास का समय उपयुक्त है।

#### रचना माधवनिदान

इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम 'रोगविनिश्चय' है। यह रोगविज्ञान का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है। इन्होंने इस ग्रन्थ में केवल प्राचीन तथ्यों का संकलन ही नहीं रूपकिया अपितु उनका विशदीकरण भी किया है, जो विचार संहिताओं में संकेत में थे उन्हें विस्तृत रूप दिया है और कहीं अतिविस्तृत विषय को सूक्ष्म कर दिया है। उन सभी का उद्देश्य रोगविनिश्चय के रूप में एक व्यावहारिक ग्रन्थ चिकित्सकों के हाथों में देना था। ग्रन्थकार ने यह बिना किसी शंका के कहा है कि जो वैद्य अल्पबुद्धि वाले हैं जो अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने में असमर्थ रहे हैं, उनके लिए यह ग्रन्थ रोगों का ज्ञान सरलतापूर्वक कराने में समर्थ होगा। अतः माधव ने 'रोगविनिश्चय' नामक ग्रन्थ को लिखकर रोग-विज्ञान की सभी समस्या को दूर कर दिया है। इसके विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है- "निदाने माधवः श्रेष्ठः"

माधवनिदान ग्रन्थ की विशेषताएँ

इस ग्रन्थ में छूटे हुए विषयों पर प्रकाश डाला है, कुछ विषयों का उल्लेख इस प्रकार है।

1. वातव्याधि:-संहिताओं में वातव्याधि पर बड़ा विस्तृत वर्णन है। वातरक्त एवं उरुस्तम्भ का दो स्वतन्त्र अध्यायों में वर्णन है। आमवात का संहिताओं में संकेतमात्र मिलता है। इसका स्वतन्त्र स्वरूप खड़ा करने का श्रेय माधव को ही है।
  2. शूल:-संहिताओं में शूल का संक्षेप में वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम माधवनिदान ने इसका विस्तृत और स्वतन्त्र वर्णन किया है। शूल के अतिरिक्त, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल का वर्णन भी किया गया है।
  3. अम्लपित्त:-संहिताओं में इसका स्वतन्त्र वर्णन प्राप्त नहीं होता है। माधवनिदान ने अम्लपित्त का स्वतन्त्र वर्णन किया है। यह गतिभेद से दो प्रकार का होता है - उर्ध्वग और अधोग । दोषभेद से तीन प्रकार का होता है- वातानुबन्ध, कफानुबन्ध, वातकफानुबन्ध।
  4. मेदोरोग:-मेदोरोग का अतिसूक्ष्म संकेत प्राचीन संहिताओं में प्राप्त होता है, परन्तु माधवनिदान में इसका स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। गुप्तकाल में मेदोरोग सबसे अधिक देखा गया था तो माधव ने इसी का अंकन अपनी रचना माधवनिदान में किया।
  5. श्लीपद:-चरक और सुश्रुत ने इसका वर्णन दूसरे प्रसंगों में किया है। माधवकर ने इसका वर्णन स्वतन्त्र अध्याय में किया है।
  6. शीतपित्तोदरदकोठ:-इसका भी स्वतन्त्र अध्याय में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त विस्फोट, और मसूरिका को भी पृथक अध्यायों में वर्णित किया।
  7. स्त्रीरोग: :-माधवकर ने स्त्रीरोगों का वर्णन 6 अध्यायों में किया है जैसे- असृग्दर, सूतिकारोग, स्तनरोग आदि।
- शल्यचिकित्सा के अतिरिक्त शल्य, शालाक्य, बालरोग, प्रसूति-स्त्रीरोग विषयों आदि का भी वर्णन किया गया है। प्रत्येक रोग का निदान होने के कारण यह सभी चिकित्सकों के लिए एक उपादेय और महनीय ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ का हिन्दी के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद प्राप्त होता है। इसका इंग्लिश भाषा का अनुवाद, जो फ्लोरेन्स में प्रकाशित हुआ। इनकी विजरक्षित कृत मधुकोष; वाचस्पति कृत आतकदर्पण की टीकार्यें प्रसिद्ध हैं।

### 3.6 शार्ङ्गधर - शार्ङ्गधरसंहिता

दार्शनिक शार्ङ्गधर, ज्यतिर्विद शार्ङ्गधर, नाटककार शार्ङ्गधर और आयुर्वेदज्ञ शार्ङ्गधर इस प्रकार एक ही नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। ये दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर हैं। यही वैद्य थे। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। शिव की पूजा का विधान कई स्थलों पर होने से यह शैव भक्त प्रतीत होते हैं।

समय:-इनके अपने ग्रन्थ में इनके समय के बारे में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। फिर भी कुछ साक्ष्यों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है।

वोपदेव ने 14 वीं शती में शार्ङ्गधरसंहिता पर टीका लिखी है। नाडीविज्ञान, अफीम, रसौषधियों की प्रमुखता का समावेश उस काल के आयुर्वेदीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ की शैली सोढल (12 वीं शती) कृत गदनिग्रह पर आधारित है। अतः इनका काल 13 वीं शती का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

रचना-शार्ङ्गधरसंहिता और उसकी विषय-वस्तु-

शार्ङ्गधरसंहिता में 32 अध्याय और 2600 श्लोक है। ग्रन्थान्त के श्लोकों में संहिता शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें तीन खण्ड हैं और खण्डों के फिर अध्याय हैं-

### 1. पूर्वखण्ड

इसमें सात अध्याय है सभी अध्यायों के पृथक् पृथक् वर्णविषय हैं-

अध्याय 1 परिभाषा

अध्याय 2 भैषजाख्यानक

अध्याय 3 - नाडीपरीक्षादि-विधि

अध्याय 4-दीपनपाचन

अध्याय 5 कालादिकाख्यान

अध्याय 6 आहारादिगति

अध्याय 7 - रोगगणना

### 2. मध्यमखण्ड

अध्याय 1 स्वरस

अध्याय 2 क्वाथ

अध्याय 3 फाण्ट

अध्याय 4-हिम

अध्याय 5 कल्क

अध्याय 6 - चूर्ण

अध्याय 7 - गुटिका

अध्याय 8- लेह

अध्याय 9 - स्नेह

अध्याय 10-सन्धान

अध्याय 11 धातुशोधन

अध्याय 12 - रस

### 3. उत्तरखण्ड

अध्याय 1- स्नेहपान

अध्याय 2 - स्वेदविधि

अध्याय 3 वमन

अध्याय 4- विरेचन

अध्याय 5 - स्नेहवस्ति

अध्याय 6 - निरूहण

अध्याय 7 - उत्तरवस्ति

अध्याय 8 - नस्यविधि

अध्याय 9 - धूमपान

अध्याय 10 गाण्डूषाधिविधि

अध्याय 11 - लेपादिविधि

अध्याय 12 - शोणितविस्त्रुति

## अध्याय 13 नेत्रकर्म

### शाङ्गधरसंहिता का महत्त्व और विशेषतायें

यह संहिता मध्यकाल की एकमात्र संहिता है। जो तत्कालीन प्रवृत्तियों एवं विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। उस युग में राजपूतों की छत्रछाया में प्राचीन विज्ञान अपने स्वरूप की रक्षा में तत्पर था। तान्त्रिकों और सिद्धों का सम्प्रदाय भी फल-फूल रहा था। चिकित्सा में सैद्धान्तिक पक्ष दुर्बल हो गया तथा कल्पों की प्रमुखता हो गई। इसीलिए इस संहिता की रूपरेखा प्राचीन संहिताओं के आधार पर न होकर नए क्रम से नियोजित की गई है तथा कल्पानुसार ही चिकित्सा का निरूपण है। इस प्रकार मध्यकालीन प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व ग्रन्थ होने के कारण इसका महत्त्व स्वयंसिद्ध है। यह स्वल्प काल में ही अपने महत्त्व के कारण लोकप्रिय हो गई। वोपदेव और हेमाद्रि जैसे विद्वान् इसकी ओर आकृष्ट हुए। दिन-प्रतिदिन यह चिकित्सा समाज के लिए पथ प्रदर्शक बन गया है। अतः मध्यकालीन लघुत्रयी में इसका नाम आदर से लिया जाता है। इसके वर्ण्य-विषय पर निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य है-

1. ऋतुओं का विभाजन राशिभेद से है जैसे ग्रीष्म मेष-वृष आदि।
2. सर्वप्रथम नाडीपरीक्षा का वर्णन शाङ्गधरसंहिता ग्रन्थ में प्राप्त होता है।
3. अहिफेन, आकारकरभ आदि नए द्रव्यों का प्रयोग हुआ।
4. भंगा का औषधीय प्रयोग प्रारम्भ हुआ।
5. रोगों का वर्गीकरण ग्रन्थ में विस्तार से किया गया है।
6. चिकित्सा में विषों का प्रयोग अत्यधिक बढ़ा था।
7. दीपन-पाचन की स्पष्ट परिभाषाएँ उदाहरण सहित लिखी गई हैं।
8. दोष-धातु मलों का निरूपण और वायु की प्रधानता बतायी गई है।
9. रस, भस्मों और रसौषधियों का वर्णन किया गया है।
10. श्वसनक्रिया द्वारा विष्णुपदामृत (आक्सीजन) शरीर के भीतर जाकर सम्पूर्ण शरीर का पोषण तथा अग्नि को प्रज्वलित करता है इस प्रकार वायु के संयोग से धातुओं का पोषण बताया है। रक्तज रोगों को दोषज रोगों से भिन्न माना।
11. चिकित्साविधियों में पञ्चकर्म, धारास्वेद, शिरोवस्ति, मूर्धतैल आदि का विशेष वर्णन प्राप्त होता है।
12. कुछ रोगों के लिए विशिष्ट औषधियों तथा औषध योगों का वर्णन किया गया है।
13. वाजीकरण के विविध प्रकारों और प्रयोगों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

शाङ्गधर ने विशेषतः अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के आधार पर अपनी संहिता की रचना की है। रसशास्त्रीय सामग्री रसशास्त्र के ग्रन्थों से ली गई है। लोकप्रिय ग्रन्थ होने के कारण इसकी अनेक टीकाएँ लिखी गईं जिनमें निम्न अत्यधिक प्रसिद्ध हुई हैं-

1. शार्ङ्गधरशारीर टीका
2. दीपिका - आढमल्लकृत
3. गूढार्थदीपिका - काशीरामकृत
4. आयुर्वेददीपिका - रूढभटकृत

इस संहिता की उपादेयता के कारण ही इसका हिन्दी, गुजराती, मराठी, एवं बंगला भाषाओं में अनुवाद हुआ है जो प्राप्त भी होता है।

### 3.7 भावमिश्र

#### भावप्रकाश

भावमिश्र आयुर्वेद के इतिहास में मध्यकाल तथा आधुनिक काल में उसी प्रकार स्थित है। जिस प्रकार प्राचीन तथा मध्यकाल की सीमा रेखा पर स्थित है। इन्होंने प्राचीन संहिताओं का अनुसरण करते हुए अपने ग्रन्थ में मौलिक विचारों और नवीन द्रव्यों का समावेश किया है। इनकी रचना भावप्रकाश अंतिम और महत्वपूर्ण है। यह वैद्य समुदाय का लोकप्रिय ग्रंथ है। इन्होंने ग्रंथ के आरंभ में अपना परिचय दिया है - "इति लटकनतन श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे" से पता चलता है कि उनके पिता लटकन थे मिश्र उपाधि तथा वितरण आदि शब्दों के प्रयोग से उनका ब्राह्मण होने का पता चलता है।

जन्म स्थान: अपने जन्म स्थान या निवास स्थान के बारे में कुछ नहीं लिखा है। कुछ विद्वान इन्हें वाराणसी या कान्यकुब्ज का मानते हैं, परंतु इस बात की पुष्टि नहीं होती है। भावप्रकाश के एक पद्य में विष्णुपद का उल्लेख होने से उनका संबंध विष्णुपद तीर्थ से प्रतीत होता है। विष्णुपद का मंदिर गया में स्थापित है। किसी पकवान विशेष के लिए "पेरकिया इति लोके" लिखा है, जो मगध में प्रचलित है परंतु उत्तरप्रदेश में इस पकवान के लिए के लिए गुजिया शब्द का प्रयोग होता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे मगध में गये थे अथवा उसके निकटवर्ती स्थान के निवासी थे। भाव मिश्र के शैव होने का संकेत कई स्थानों पर प्राप्त होता है। प्रारंभ में गणेश की वंदना की गई है। विष्णु को श्रीपति और मधुसूदन नामों से पुकारा गया है। त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) और हनुमान का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

काल: भाग मिश्र ने अपने काल के विषय में स्पष्टतः कुछ नहीं लिखा है। इनके ग्रंथ में उद्धृत ग्रंथकारों के आधार पर इनका काल निर्णय करना ही उचित है। तेरहवीं शताब्दी के ग्रंथ शार्ङ्गधरसंहिता का इन्होंने विशेष रूप से अनुकरण किया है। निघंटु भाग में मदनपाल निघंटु का प्रयोग किया है। संभवतः अहिफेन, भंगा, पारसीकयवानी आदि मध्यकाल की औषधियां वहीं से ली गई हैं। मदनपाल निघंटु की रचना 1347 ईस्वी में पूरी हुई थी। दूसरी ओर 17 वीं शताब्दी के ग्रंथ योगरत्नाकर, योगतरंगिणी,

लोलिंबराज का भी भावप्रकाश में उल्लेख प्राप्त होता है। भावप्रकाश की प्राचीनतम पांडुलिपि जम्मू पुस्तकालय में संख्या 1722/ 1665 इस्वी की है।

अतः इन सब तथ्यों के आधार पर भाव मिश्र का समय 15 और 17 वीं सदी के बीच में अर्थात् सोलवीं शती सिद्ध होता है। व्याकरण में भट्ट जी दीक्षित और साहित्य में पंडित जगन्नाथ का जो स्थान है वही भाव मिश्र का आयुर्वेद में है।

रचनायें:-इनकी प्रमुख कृति भावप्रकाश ही है, परन्तु इसके अतिरिक्त एक रचना 'गुणरत्नमाला' का भी नाम दृष्टिगोचर होता है। जिस पर संभवतः भावप्रकाश का निघण्टुभाग आधारित है।

भावप्रकाश:-भावप्रकाश तीन खण्डों में विभक्त ग्रन्थ है-

1. पूर्वखण्ड:- इसके भी दो भाग हैं। प्रथम भाग - इसमें आयुर्वेदावतरण से प्रारम्भ करके सृष्टिप्रकरण, गर्भप्रकरण, बालप्रकरण, दिन-ऋतुचर्या प्रकरण तथा मिश्र प्रकरण का वर्णन है

(ख) द्वितीय भाग:- इसमें मान परिभाषा, भैषजविज्ञान, धात्वादि-शोधनमारणविधि और रोगपरीक्षा प्रकरण हैं।

2. मध्यम खण्ड:- इसमें चार भाग हैं

1. प्रथम भाग- ज्वर से संग्रहणी तक का वर्णन है।

2. द्वितीय भाग - अर्श से वातरक्त तक का वर्णन है।

3. तृतीय भाग - शूल से भग्न तक।

4. चतुर्थ भाग- नाडीव्रण से बालरोग तक।

मध्यम खण्ड में 71 अध्यायों में चिकित्सा का वर्णन है।

3. उत्तरखण्ड:- इसमें केवल वाजीकरण और रसायन का वर्णन प्राप्त होता है।

भावमिश्र आयुर्वेद के विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिये। उन्होंने परम्परागत ज्ञान को और तत्कालीन ज्ञान को अपने चिकित्सीय अनुभवों से परिष्कृत एवं विकसित करने का कार्य किया है।

भावप्रकाश का मौलिक सिद्धान्त-

इसमें प्राचीन संहिताओं में वर्णित सिद्धान्तों को विशद रूप दिया गया जैसे-

1. आयुर्वेद की परिभाषा प्राचीन के साथ व्यवहारिक होने से दो प्रकार हो गई है।
2. सभी पञ्चमहाभूतों के नाम 'व' अक्षर से दिए गए हैं।

'तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुर्वह्निवारिवसुन्धराः'।

3. जिस प्रकार सुश्रुत में प्रकृति-विकृति का पृथक् वर्ग नहीं है अपितु 'अही प्रकृतय' कह दिया है अपितु यहाँ इनका पृथक् पृथक् वर्ग है।
4. आठ मांगलिक द्रव्यों का भी वर्णन है।

द्रव्यगुणः-इनके समय तक प्रचलित अनेक देशी-विदेशी द्रव्यों के गुण-धर्म का उल्लेख प्राप्त होता है यहाँ कुछ द्रव्यों का वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता है-

1. कर्पूर दो प्रकार का कहा है पक्व और अपक्व।
2. कस्तूरी तीन प्रकार की बतायी है - कामरूपी (आसामी), नेपाली तथा काश्मीरी। इनमें सर्वोत्तम कामरूप कस्तूरी कही गई है।
3. कुङ्कुम तीन प्रकार की बतायी है- काश्मीरी, बाह्यीक, पारसीक। इनमें सर्वोत्तम काश्मीरी बतायी है।
4. सुलभ और उपयोगी कदली भी माणिक्य और चम्पक आदि भेद बताये हैं। ये सभी हाजीपुर (मुजफ्फरपुर, बिहार) में पाये जाते हैं।
5. अष्टवर्म तथा उसके प्रतिनिधि द्रव्यों का वर्णन है
6. द्रव्यों के परीक्षण की विधि बतलाई है।
7. खनिजों में स्वर्ण को पाँच प्रकार का और रजत को तीन प्रकार का कहा गया।
8. औषधद्रव्यों की प्राप्ति में कठिनाई को देखते हुए उनके समान गुणधर्म वाले प्रतिनिधि द्रव्यों का वर्णन प्राप्त होता है।

चिकित्सा:- चिकित्सा के क्षेत्र में भावमिश्र का विशेष योगदान है-

1. फिरंग, मसूरिका (शीतला), सोमरोग, मूत्रातीसार, शय्यामूत्र आदि नये रोगों का वर्णन किया गया है।
2. वाजीकरण प्रकरण में कामेश्वरमोदक, आकारकरभादि चूर्ण, मृतसंजीवनी सुरा, श्रीगोपालतैल आदि का वर्णन है।
3. अनेक गर्भनिरोधक योग दिए गए हैं।
4. अहिफेनासव, कर्परासव आदि नवीन योगों का प्रयोग चिकित्सा में बताया ।

भावप्रकाश में रसौषधियों का अत्यधिक प्रयोग प्राप्त होता है। प्रयोग में आने वाली अधिकांश औषधियों के विषय पर इसमें प्रकाश डाला गया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि औषधियों के प्रयोग का यह इतना प्रसिद्ध ग्रन्थ था कि 40-50 वर्ष पूर्व अधिकांश वैद्य एकमात्र भावमिश्र कृत भावप्रकाश के द्वारा चिकित्सा करके जीवीकोपार्जन करते थे।

भावप्रकाश पर अनेक टीकार्ये लिखी गई, परन्तु शालिग्राम कृत बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस से 'भावप्रकाश' की हिन्दी टीका 1906 में प्रकाशित हुई है। इनके निघण्टु भाग का तो अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इसीलिए भावप्रकाश का अधिक प्रचार हुआ। विशेषकर निघण्टु भाग का।

Lecture by-

Dr. Ritu Mishra

SEM. 5th

Department of sanskrit

Shivaji college.